भाव तेरे शब्द मेरे...

मदनमोहन व्यास

भाव तेरे शब्द मेरे...

डा0 धीरे[illegible]

नाम - मदन मोहन व्यास

पता - पचपेड़ा, कठघर, मुरादाबाद।

विषय - काव्य

मौलिक

किसी भी पुरस्कार में अभी तक नहीं भेजी।

प्रकाशन तिथि २९ मार्च १९८७

मदनमोहन व्यास

व्यास-बन्धु प्रकाशन
पचपेड़ा, कठघर
मुरादाबाद

प्रथम संस्करण १९५९
मूल्य २-५० नये पैसे

आवरण सज्जा
रामनाथ दुबे
मुरादाबाद

मुद्रक
प्रतिभा प्रेस
मुरादाबाद

पूज्य पिताश्री
श्री पुरुषोत्तम व्यास को
जीवन रूप में जिनसे मुझको स्नेह मिला।

पूज्य चाचा
पण्डित नरोत्तम व्यास को
जिनसे मुझको [illegible] मिला।

मदनमोहन व्यास

रंगभरी एकादशी
संवत् २०१५

पूर्व-रंग

नव-रस-मोदक-प्रिय, कुतर्क-मूषकारूढ़, गुण-धाम,
शुक्लाम्बरधर 'शिव-बालक' को मेरा प्रथम प्रणाम।
उर-कुञ्जों में जिनका वंशी-रव भरता उल्लास,
उन्हीं 'कृष्ण' से सजग रहे मेरे मन का विश्वास।
मेरी अमर सभा के अधिपति जय जय जयति 'महेन्द्र'
जिनके ज्ञान–वज्र से विजड़ित, अविचल खड़े नगेन्द्र।
जय मुनि भारद्वाज, बृहस्पति के सजीव अवतार,
जय 'प्रभु-दत्त'-गुणान्वित, मेरी परिषद् के शृङ्गार।
जो जल में थे जलज, पंक में पंकज बने ललाम,
सत्साहित्य-सदन, उदार-मन, जय जय 'सीताराम'।
सुभग कुमार-कुञ्ज-पति, जिनमें नहीं अहं का लेश,
हरि-जन-भक्त, भूमिसुर-सेवक, श्रीपति जयति 'रमेश'।
नागर-वंश-उजागर, संस्कृति-मण्डल के शशिभाल,
ज्योतिर्विद्, त्रिकालदर्शी जय जय 'अम्बा के लाल'।
जय 'जगदीश्वर', सर्वेश्वर' 'शिव' अपने मन के भूप,
जयति विदग्ध 'रामसेवक', मुनि नारद के प्रतिरूप।
चारण, भाट, विदूषक जो हूँ इसी सभा के अर्थ,
इसी सभा में नृत्य-गान कर, मैं बन सका समर्थ।
इस नन्दन-कानन को वन्दन, अभिनन्दन सौ बार,
हे अनन्त, इस चारण का यह बना रहे दरबार।

रँगभरी एकादशी
२०१५

भूमिका

अक्टूबर १९५८ में मैं नैनीताल गया था। ग्रैंड होटल में ठहरा था। एक रात की बात है, मैं खाना खाकर अपने कमरे के सामने के बारजे पर बैठा था। उस रात नैनीताल में कोई कवि-सम्मेलन था और लाउडस्पीकर से कविता पाठ की ध्वनि सामने फैली नीरव झील पर लहराती हुई होटल तक आ रही थी। तभी मुझे किसी कवि की ये पंक्तियाँ भाव—भीगे और माधुर्यपूर्ण स्वर में सुनाई पड़ीं।

भाव तेरे, शब्द मेरे,
गीत बनते जा रहे हैं।

कविता लम्बी थी। पर यह टेक बारम्बार आई थी, इसलिये स्मृति में टँक-सी गई।

जनवरी १९५९ में एक कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिये मैं मुरादाबाद गया हुआ था। वहाँ ये पंक्तियां उसी पूर्व परिचित स्वर में मुझे सुनने को मिलीं। मुझे नैनीताल की वह रात याद हो आई और मेरी आँखों के सामने वह सारा समा घूम गया जिसमें मैंने सर्व—प्रथम इन पंक्तियों को सुना था। कवि से व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करने का सुअवसर भी मिला। तभी उन्होंने मुझे यह बताया कि उनकी कविताओं का एक संग्रह निकट भविष्य में निकलने वाला है।

अब यह संग्रह छप कर तैयार है। इसका नामकरण उपर्युक्त गीत की प्रथम पंक्ति के आधार पर हुआ है 'भाव तेरे, शब्द मेरे'।

श्री मदनमोहन व्यास, इस काव्य संग्रह के रचयिता, का आग्रह है कि मैं इसकी भूमिका लिख दूं। जिसकी पंक्तियाँ कान में पड़ते ही स्मृति में अपना स्थान बनालें उसके संग्रह को किसी की भूमिका की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। फिर भी, अपनी इस रचना के साथ भूमिका लेखक के रूप में, मेरा नाम संबद्ध करने की जो अभिलाषा उन्होंने प्रकट की है उसका मैं आदर करता हूँ और इसके लिये उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

श्री मदनमोहन व्यास, मुरादाबाद जिले और नगर में सुविख्यात व्यास-परिवार के सदस्य हैं, जिसमें साहित्य, संगीत और कला की साधना पीढ़ी-दर-पीढ़ी होती आई है; आत्मविज्ञापन की दृष्टि से नहीं, बल्कि आत्मसंस्कार की दृष्टि से। श्री मदनमोहन व्यास को काव्याभिरुचि पैतृक दाय के रूप में मिली है, परन्तु उस दाय का, मेरी दृष्टि में, अधिक मूल्यवान भाग है वह आत्मसंयम जिसे वे अपना संकोच कहते हैं। यही कारण है कि वे अपनी चालीस वर्ष की अवस्था में अपना पहला काव्य संग्रह निकलवा रहे हैं और वह भी किसी कारण विशेष के उपस्थित होने पर। उनका विचार है कि काव्य में आनन्द लेना, और आनन्द के लिये काव्य रचना करना प्रत्येक सुसंस्कृत व्यक्ति के क्रिया-कलाप का साधारण अंग होना चाहिए। ऐसा करने पर, गले में ढोल डाल, कहते फिरना, मैं कवि हूँ, मैंने साहित्य में क्रान्ति उपस्थित कर दी, मैंने नई धारा प्रवाहित कर दी, मैंने नया वाद चला दिया, उच्छृंखलता है, ओछापन है। व्यास जी अपना संग्रह निकाल रहे हैं और अपने संकोची स्वभाव के कारण ऐसा समझ रहे हैं जैसे काई गुनाह करने जा रहे हैं। मैं अपनी पहली मुलाकात में ही समझ

गया था कि वे अपने विषय में कुछ न कह सकेंगे और इसलिये मैंने अधिक तत्परता के साथ उनके प्रस्ताव का स्वागत किया।

व्यास जी का जीवन एक स्वावलम्बी और संघर्षशील व्यक्ति का जीवन है। उन्होंने जीवन में कवि बनने का ध्येय नहीं बनाया। उन्होंने ध्येय बनाया है कि मैं कुछ इस योग्य बन सकूं कि ईमानदारी के साथ समाज की सेवा करके अपना जीविकोपार्जन कर सकूं, अपने आश्रितों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कर सकूं, उनके भरण-पोषण के लिए यथोचित सामग्री जुटा सकूं। इस संघर्ष में जुटे हुए, चिंताकुल घड़ियों के भार को हल्का करने के लिये, थकन मिटाने के लिये, आगे कार्य की प्रेरणा पाने के लिए कुछ गा लिया जाये तो बुरा क्या है। नहीं, इसी तरह से गाना ठीक है। जिनको सिवा गाने के कोई काम नहीं वे मुझे बीमार लगते हैं।—

वे मुझे बीमार लगते हैं निकुंजों
में पड़े जो गीत अपना मिनमिनाते,
गीत लिखने के लिये जो जी रहे हैं;
काश, जीने के लिये वे गीत गाते।

मेरे आदर्श का कवि वह है जिसके—

'भार सिर पर, कंठ में स्वर,'

जो यह कह सकता हो—

'हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।'

व्यास जी के सिर पर भार है और कंठ में स्वर है और उन्होंने जीवन समर में खड़े होकर अपने गीत लिखे हैं। इससे जीवन कवित्व-मय होता है और काव्य जीवनमय। स्वल्प सामर्थ्य में भी जिस दिन
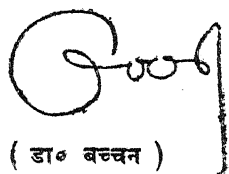
व्यास जी ने अपनी विधवा बहन की कन्या का विवाह कराया था उस दिन, मैं कहना चाहूँगा, उन्होंने एक करुण-काव्य ही तो लिखा था। और जिस दिन उन्होंने लिखा था—

चुक गया पाथेय मेरा,
लक्ष्य अब भी दूर, प्रियतम !
पंथ बीहड़ अङ्ग जर्जर
पांव थककर चूर, प्रियतम !

उस दिन उनका जीवन-संघर्ष ही तो मुंह खोलने को विवश हुआ था।

पाठक किसी कवि की रचना में किस चीज़ की प्रत्याशा करता है, क्या पाता है, यह पाठक बताए। गुड़ का स्वाद बताने से मुंह में गुड़ की डली नहीं चली जाती। गुड़ की डली की खोज भी गुड़ खाने के आनन्द का एक भाग है। कविता के गुण का वर्णन सुनने से काव्यानन्द नहीं आता। उसकी खोज अपने आप की जानी चाहिए। यदि यह पुस्तक आपके हाथ में पड़ती है तो मैं कहूँगा कि आपका सौभाग्य है। यह एक ऐसे कवि की रचना है जिसका दृष्टिकोण जीवन और काव्य के प्रति स्वस्थ है। मैं जिस रस की प्रत्याशा से कविताओं की ओर झुकता हूँ उसमें सबसे ऊपर 'अश्रु, स्वेद और रक्त' आते हैं, और मुझे इस संग्रह की पंक्तियों के पीछे इनका अभाव नहीं जान पड़ा।

अन्त में मैं श्री मदनमोहन व्यास के प्रति यह शुभ-कामना व्यक्त करना चाहता हूँ कि भविष्य में वे अपने अनुभवों को अधिकाधिक विदग्धता से व्यक्त करने में सफल हों जिससे संघर्ष में धँसे हुए लोगों को उनमें अधिकाधिक सम एवं सह-अनुभूति प्राप्त हो सके।

२१६ डी-१,
चाणक्यपुरी (दक्षिण)
नई दिल्ली

(डा० बच्चन)

माँ, क्या माँगूँ !

तेरा 'दिया' पूर्ण है, जिसमें अक्षय तेरा स्नेह,
तेरे गुण की लौ से आलोकित है मेरा गेह ।

तेरी पद-गति में नूपुर-से बँधे हुए हैं छन्द,
जिनकी ध्वनि से फूट पड़ा है मेरा शब्द-प्रबन्ध ।

तुझसे स्वर-लय पाकर मेरे गूँजे राग ललाम,
वागीश्वरि, वीणा ने तेरी, वाणी दी अभिराम ।

बिन माँगे ही मुझे मिला गायक-कवि का वरदान,
मुझ 'निगुने' को दिया जगत ने गुणियों का सम्मान ।

पर माँ, मेरे भाग्य-भाल में इतना लिखदे और-
वहाँ न करूँ कवित्व-गान मैं अरसिक हों जिस ठौर ।

*

एक

*

भाव तेरे, शब्द मेरे,
गीत बनते जा रहे हैं।

आज तूने छू करों से
उर-कमल विकसित किया है,
आज तूने मधुप को-
मधुपान का साधन दिया है,
हो उठा मुखरित विहग-रव
आज तेरे इङ्गितों पर,
आज सुन्दर सत्य का
आभास मैंने पा लिया है,

गन्ध तेरी, फूल मेरे,
तरु महकते जा रहे हैं।
भाव तेरे, शब्द मेरे
गीत बनते जा रहे हैं।

मैं पड़ा था जड़-अचेतन
विश्व सारा चल रहा था,
निज विवशता की अनल में
मैं स्वयं ही जल रहा था,
आज तूने शक्ति दे
पाषाण को गतिमय बनाया,
अब उसे मैं छल रहा हूँ
कल मुझे जो छल रहा था,

चाल तेरी, पाँव मेरे,
पथ पिछड़ते जा रहे हैं।
भाव तेरे, शब्द मेरे,
गीत बनते जा रहे हैं।

भर उषा-छवि से हृदय—
पूषा निशा का तम हटाता,
दिवस आता कोक-कोकी-मिस
किनारों को मिलाता,
फिर जवनिका-पात होता
फिर नया रूपक बदलता,
यामिनी की छवि–सुधा पी
शशि गगन में जगमगाता,

रूप तेरा, नयन मेरे
स्वप्न ढलते जा रहे हैं ।
भाव तेरे शब्द मेरे,
गीत बनते जा रहे हैं ।

बोलने को बोलता था
पर न थी रसना प्रवीणा,
देखने को देखता था
पर रसा थी रस विहीना,

आज तेरी प्रेरणा पाकर
सरस वाणी हुई है,
तार से मिजराब टकराई
क्वणित हो उठी वीणा,

राग तेरा, कण्ठ मेरा,
स्वर निकलते जा रहे हैं।
भाव तेरे, शब्द मेरे,
गीत बनते जा रहे हैं।

*

दो

*

तुम मधुर मुसकान दो

तो गीत के स्वर साध लूं मैं।

पुण्य जब करता रहा

तो कीर्ति का लोलुप कहाया,

साधना को स्वार्थ की ही

सिद्धि का साधन बताया,

पर न है चिन्ता मुझे कुछ

जग अभी क्या क्या कहेगा,

मैं तुम्हारे रूप चिन्तन में

घुलादूं स्वर्ण-काया,

तुम अभय वरदान दो
तो कर बहुत अपराध लूँ मैं ।
तुम मधुर मुसकान दो
तो गीत के स्वर साध लूँ मैं ।

मैं जलालय से हिमालय के
शिखर तक घूम आया,
मन्दिरों में तीर्थ का जल
बहुत श्रद्धा से चढ़ाया,
पर न है चिन्ता मुझे कुछ
प्रिय, रहे जो तुम अजाने,
मैं तुम्हें पहचानने का
अब नया अभिमान लाया,

तुम मुझे प्रणिधान दो
तो अश्म को आराध लूँ मैं ।
तुम मधुर मुसकान दो
तो गीत के स्वर साध लूँ मैं ।

चुक गया पाथेय, मेरा

लक्ष्य अब भी दूर प्रियतम !

पन्थ बीहड़, अंग जर्जर,

पाँव थक कर चूर प्रियतम !

पर न है चिन्ता मुझे कुछ,

आँधियाँ, तूफान आयें,

मैं चलूँगा प्रलय तक

यदि काल भी हो क्रूर प्रियतम !

तुम मुझे प्रस्थान दो

तो गति अथक, निर्बाध लूँ मैं ।

तुम मधुर मुसकान दो

तो गीत के स्वर साध लूँ मैं ।

मैं खड़ा हूँ इस किनारे

तुम खड़े प्रिय, उस किनारे ,

बीच में बैठी सलिल-सुरसा

भयंकर मुख पसारे ,

पर न है चिन्ता मुझे कुछ,

वायु-सुत की शक्ति मुझ में,

पार कर उत्तुङ्ग लहरें

पास पहुँचूँगा तुम्हारे,

नयन—इङ्गित—यान दो

तो लाँघ जलधि अगाध लूँ मैं ।

तुम मधुर मुसकान दो

तो गीत के स्वर साध लूँ मैं ।

तुम मुझे दो भक्ति,

जन-जन को नया विश्वास दूँ मैं,

तुम मुझे दो स्नेह,

दिक्-दिक् को अनन्त प्रकाश दूँ मैं,

तुम मुझे दो हास,

अग-जग को मधुर मधुमास दूँ मैं,

तुम मुझे दो श्वास,

अणु-अणु को मदिर उच्छ्वास दूँ मैं,

तुम नवीन विधान दो
तो राग अभिनव बाँध लूँ मैं ।
तुम मधुर मुसकान दो
तो गीत के स्वर साध लँ मैं ।

*

तीन

*

खिले रसभरे नीरजों को निरख कर
मधुप झूम झुक उठ रहे, मिल रहे हैं ।

कसे उर्मियों के करों में किरण को
तरङ्गित हृदय-सर बहा जा रहा है ,
गगन भी धरा के अधर चूमने को
क्षितिज के किनारे झुका जा रहा है ,

किसी कान्ह की बाँसुरी तान सुनकर
किसी राधिका के नयन खिल रहे हैं ।
खिले रस भरे नीरजों को निरख कर
मधुप झूम झुक उठ रहे, मिल रहे हैं ।

नियति को नया रूप-यौवन लुटाने
नये साज के साथ मधुमास आया,
रसिक-सूर्य ने भाल पर दिग्वधू के
किरण-हस्त से स्नेह-कुंकुम लगाया,

प्रणय की नदी में नयन-नाव पर चढ़
अपरिचित हृदय खो रहे, रिल रहे हैं।
खिले रसभरे नीरजों को निरख कर
मधुप झूम झुक उठ रहे, मिल रहे हैं।

किनारे-किनारे चली जा रही जो
वही धार मँझधार में जा मिलेगी,
जहाँ हास, उल्लास छाया हुआ है
वहाँ पैंठ फिर वेदना की जुड़ेगी,

न यह सोचने का समय है किसी को
कि उर के भरे घाव फिर छिल रहे हैं।
खिले रसभरे नीरजों को निरख कर
मधुप झूम झुक उठ रहे, मिल रहे हैं।

बड़ा ही जटिल रूप का जाल है यह
न इनको यही ज्ञात फँस जायेंगे हम ,
बड़ा ही कठिन मोह का पाश है यह
न उनको यही ज्ञात कस जायेंगे हम ,

मिलन के मधुर गीत ये गा रहे हैं
हरित पल्लवों-मध्य वे हिल रहे हैं ।
खिले रसभरे नीरजों को निरख कर
मधुप झूम झुक उठ रहे, मिल रहे हैं ।

*

चार

*

प्रियतम ! रहने दो, रहने दो ।

कोरी बातें करना सीखे
उर को क्या पहचान सकोगे,
अश्रु भरे हैं क्यों नयनों में
इसको कभी न जान सकोगे ,

यह भर्त्सना नहीं है, केवल—
आँखों का पानी, बहने दो ।
प्रियतम ! रहने दो, रहने दो ।

माना, भूले-भटके आती—
याद कभी, तो आ जाते हो,
पर तुम पल भर पलक मिलाकर
अलक हिलाकर हँस जाते हो,

मैं क्या केवल यही चाहती?
मुझको पीड़ा ही सहने दो।
प्रियतम! रहने दो, रहने दो॥

* * * *

प्रियतम! यह कैसे समझाऊँ?

प्रेम नहीं तो व्यर्थ अरे! यह
हँस-हँस कर सौभाग्य मनाना,
मैं तो मानो वह पंछी हूँ—
जिसने पिंजरे को सुख माना,

यह तो केवल अविश्वास—
चाहे कितना भी आदर पाऊँ।
प्रियतम! यह कैसे समझाऊँ?

सांध्य-काल में दीप जलाकर
सँग लेकर काया की छाया,
इस आशा में बैठी रहती—
देखूँगी मुखड़ा मन-भाया,

पर तुम लेकर प्राण—
चले जाते हो, मैं निष्प्रभ रह जाऊँ।
प्रियतम ! यह कैसे समझाऊँ।

* * * *

प्रियतम ! भूल गये क्या वे क्षण ?

प्रथम प्रणय की वह बेला थी
अमल शरद का नवल आगमन,
धवल क्षीण सी मेघ पंक्ति औ'—
बाल-अरुण की मसृण मृदु किरण,

तब तो मेरी ओर निरख—
होता था तव-प्राणों में कम्पन।
प्रियतम ! भूल गये क्या वे क्षण ?

हार सिंगार खिला था वन में
फूलों से पूरित था तरु-तल,
सरिता की कल-कल ध्वनि सुनकर
सागर भी था उर्मिल चञ्चल,

तब तुम स्वयं खिंचे आते थे
क्या वह झूठा था आकर्षण ?
प्रियतम ! भूल गये क्या वे क्षण ?

* * *

प्रियतम ! अब समझी वह भ्रम था ।

हास्य नहीं, था व्यङ्ग तुम्हारा,
हर्ष नहीं, केवल विषाद था,
हृदय नहीं, वह कालकूट था,
दृष्टि नहीं, वह मदोन्माद था,

वह सुहाग था नहीं, कपट था,
प्रेम नहीं, छलने का श्रम था ।
प्रियतम ! अब समझी वह भ्रम था ।

देख रही हूँ—इन आँखों में—
शंका, भय, संदेह भरा है,
पर मेरे उर को तो देखो
इसमें कितना स्नेह भरा है,

हृदय-चीर बह चली वेदना
तुम समझे—रोने का क्रम था ?
प्रियतम ! अब समझी वह भ्रम था ।

*

पांच

*

तुम्हारे चरण मृदु न छोड़ूँ, न छोड़ूँ,
तुम्हारे पदाघात से मैं निडर हूँ ।

उषा ने जभी आ किरण डोर वाले
मधुर कल्पना के हिंडोले झुलाया,
अचानक कहीं से हृदय में समाकर
तभी प्रेम का पेंग तुमने बढ़ाया,

कि जो चोट खा तीर से लौट जाये
न मैं उस उदधि की तिरस्कृत लहर हूँ ।
तुम्हारे चरण मृदु न छोड़ूँ, न छोड़ूँ,
तुम्हारे पदाघात से मैं निडर हूँ ।

विटप पर पनप कर सुमन बन गया जो
जिसे सींचकर अश्रु-जल से बढ़ाया,
मलय-श्वास ने था खिलाया हिलाया
जिसे दे अधर-दान अरुणिम बनाया,

उसी में लगे कण्टकों को निरख कर,
सुरभि-मधु तजूँ ! मैं न ऐसा भ्रमर हूँ ।
तुम्हारे चरण मृदु न छोड़ूँ, न छोड़ूँ,
तुम्हारे पदाघात से मैं निडर हूँ ।

तुम्हें एक ही बार मणि-सी गँवाकर
विकल बावरा मैं 'फणी' बन गया था,
अरी निष्ठुरे ! आग उर में लगाकर
तुम्हारा हृदय फागुनी बन गया था,

कठिन वज्र भी मोम होगा पिघल कर
विरह-ताप से बन गया मैं प्रखर हूँ ।
तुम्हारे चरण मृदु न छोड़ूँ, न छोड़ूँ,
तुम्हारे पदाघात से मैं निडर हूँ ।

तुम्हारी प्रतीक्षा गिनाती जिन्हें वे
सितारे झुके, पर न मैं झुक सका था,
तुम्हें खोजने को चला था जहाँ,
पन्थ वह रुक गया, पर न मैं रुक सका था,

तुम्हें पा लिया, पर तुम्हारा प्रणय
पा सकूँगा न जब तक अडिग हूँ, अचर हूँ ।
तुम्हारे चरण मृदु न छोड़ूँ, न छोड़ूँ,
तुम्हारे पदाघात से मैं निडर हूँ ।

*

छः

*

तुमने अधरों की मुसकानें ही देखीं,
उर की पीड़ा का तुमको आभास नहीं ।

अन्तर की वाडव-ज्वाला से दग्ध पयस्
बनकर वाष्प अदृष्ट शून्य में उड़ जाता,
किसकी आँखों से ये बरस पड़े आँसू
जग कहता बादल रिमझिम गाने गाता ।

तुमने केवल तट की लहरें ही देखीं
सागर के दुख पर तुमको विश्वास नहीं ।
तुमने अधरों की मुसकानें ही देखीं
उर की पीड़ा का तुमको आभास नहीं ।

किसके वक्ष:स्थल की पावक से नि:सृत
कानन-आनन पर छाई वासन्तिकता,
किसके ये उच्छ्वास बने निशि के आँसू
जग कहता है इन्हें तुहिन-कण के मुक्ता,

तुमने भू पर फूलों को खिलते देखा
भू-तल का लुटता देखा मधुमास नहीं।
तमने अधरों की मुसकानें ही देखीं
उर की पीड़ा का तुमको आभास नहीं।

उपल-हृदय के किसी कोण में अन्तर्हित
व्यथा भरी यह कैसी आग धधकती है,
तृषित देख अग-जग को झर पड़ते आँसू
जग कहता सरिता कल-कल ध्वनि करती है,

तुमने श्रृंगों का ही रजत-हास देखा
हिम-गिरि का देखा तरलित प्रश्वास नहीं।
तुमने अधरों की मुसकानें ही देखीं
उर की पीड़ा का तुमको आभास नहीं।

मेरे प्राण-पखेरू सुधि के पंखों पर
उड़ते रहते हैं अनीड़ खोये-खोये,
मत छेड़ो तुम, ढुलक न जायें वे आँसू
जो मैंने अब तक हँस-हँस कर जोये,

तुमने जीवन की मादकता ही देखी
कटुता भी देखो इतना अवकाश नहीं ।
तुमने अधरों की मुसकानें ही देखीं
उर की पीड़ा का तुमको आभास नहीं ।

*

सात

❋

प्राण, तुम्हारी देख रूप-छवि
मन-चाहा वरदान मिल गया ।

दूर गगन की किरणें पाकर
हृदय-कुमुदिनी खिल जाती है,
पा न सका शशि को चकोर
पर रूप-तृप्ति तो मिल जाती है,

यही बहुत—इन आँखो को—
उन आँखों से सम्मान मिल गया ।
प्राण, तुम्हारी देख रूप-छवि
मन-चाहा वरदान मिल गया ।

मरु–मरीचिका–जल केवल भ्रम
पर मृग शक्ति उसी से पाता,
पत्थर की प्रतिमा न पसीजे
पर नर भक्ति उसी से पाता,

दीपक की लौ पर पतंग को
जलने का अभिमान मिल गया ।
प्राण, तुम्हारी देख रूप-छवि
मन-चाहा वरदान मिल गया ।

सावन के घन गरज, शिखी के
पग की लय-गति बन जाते हैं,
एक बूंद की आशा से ही
ऊर्ध्वानन चातक गाते हैं,

सिद्ध साधना हुई न मानो—
पहले ही भगवान मिल गया ।
प्राण, तुम्हारी देख रूप-छवि
मन-चाहा वरदान मिल गया ।

सान्ध्य-क्षितिज के बनते मिटते
रंगों-सा शृङ्गार तुम्हारा,
ओ निर्बन्ध-रागिनी, कोई
बन न सका स्वरकार तुम्हारा,

तुम्हें देख कवि को कविता का
सांकेतिक आह्वान मिल गया।
प्राण, तुम्हारी देख रूप-छवि
मन-चाहा वरदान मिल गया।

*

आठ

*

चाँद गगन में आया तो चाँदनी धरा पर छा गई ।

धवल तारिकाएँ तारों से
गुप-चुप करतीं बात रे !
सुरभित हुआ समीर
निशा-गन्धा का छूकर गात रे !
पर न कोक-कोकी ने पाया
मिलने का अधिकार रे !
बसा किसी का सद्म, किसी का
उजड़ रहा संसार रे !

मिला कुमुदिनी को सुहाग, पर कमल-कोर कुम्हला गई ।
चाँद गगन में आया तो चाँदनी धरा पर छा गई ।

नीलाम्बर को मिला न यदि
हिमकर का उचित प्रसाद रे !
छाया रहा दिशा-मुख पर यदि
सूना-सा अवसाद रे !
अद्रि-शिखर से हो न सका यदि
निविड़ तिमिर का नाश रे !
बन में द्रुम-वल्लरियों पर यदि
हुआ न पूर्ण प्रकाश रे !

पर शशि-वर को पाकर रजनी-दुलहिन तो पुलका गई।
चाँद गगन में आया तो चाँदनी धरा पर छा गई ।।

*

नौ

*

दृग–गगन में चाँद मेरे आगये,
उर–धरा को रश्मि से नहला गये।

विरह–आतप–तप्त जीवन–विटप–दल
प्रात–गीले साँझ थे पीले हुए,
प्रिय, तुम्हारे रूप की रूपा मिली
पात के फिर गात चमकीले हुए,
छवि–छटा की कोर पा मुकुलित–कुमुद
हो व्यथा से मुक्त उन्मीले हुए,
शर्वरी का सुख मिला तो प्राण की
वेणु के स्वर और सुरभीले हुए,

दर्शनों से कब किसी का मन भरा
तुम तृषातुर-तृप्ति से बहला गये ।
दृग-गगन में चाँद मेरे आगये,
उर-धरा को रश्मि से नहला गये ।

वक्ष का स्पंदन, उनींदे ये नयन
मौन होकर देखता कब तक रहूँ,
चाहता युग-बन्धनों में बाँधकर
इस लता को अंक में अंकोर लूँ,
साँस के सुरभित पवन के वेग से
मसृण, कोमल वृन्त को झकझोर दूँ,
चाहता हूँ विरस अपने बिम्ब को
विद्रुमों के तरल रस में बोर दूँ,

पर किसी का स्वप्न कब सच्चा हुआ
तुम यही तो भोर से कहला गये।
दृग-गगन में चाँद मेरे आगये,
उर-धरा को रश्मि से नहला गये।

रात ढलकी, बात कुछ ऐसी चली
गगन छलका, डूबने तारे लगे,
चाँदनी पीली पड़ी, पौ फट गई
पाटलों पर झूमते मोती जगे,
पञ्च-शर के पुष्प-शर चलने लगे
पूर्व को सन्तप्त करते रवि उगे,
स्वप्न टूटा, सत्य सब झूठा हुआ
पिक-गले के स्वर लगे पीड़ा पगे,

प्राण ! बस केवल कहानी रह गई
उर-व्रणों को तुम तनिक सहला गये।
दृग-गगन में चाँद मेरे आगये
उर-धरा को रश्मि से नहला गये।

*

दस

*

प्राण, मुझे तुम मिल न सकोगी यह निश्चय है,
पर मैं तुमको कैसे भूलूँ, यह बतला दो ।

यह पूनम का चाँद गगन में जब आता है
तुम नयनों में धवल चाँदनी सी छा जातीं,
अमा-तिमिर में जब अग-जग लय हो जाता है
तब तुम अभिसारिका-सदृश सम्मुख आ जातीं,

उर-झुरमुट में खेल रहीं तुम आँख मिचौनी,
मैं सपनों पर कैसे फूलूँ, यह बतलादो ।
प्राण, मुझे तुम मिल न सकोगी यह निश्चय है,
पर मैं तुमको कैसे भूलूँ, यह बतला दो ।

जब रिम-भिम की वीणा, गर्जन की मृदंग पर
पिक के स्वर में, मेघ–राग गाते घन–गायक,
तब वर्षा–नायिका पवन के झोंटे देती
और भूलते बूंद–हिंडोले सावन–नायक,

मेरी आशा–डोर जीर्ण हो टूट गई है,
ग्रन्थि लगाकर कैसे भूलूँ, यह बतलादो।
प्राण, मुझे तुम मिल न सकोगी, यह निश्चय है,
पर मैं तुमको कैसे भूलूँ, यह बतलादो।

विटप धरा को पुष्प सर्मपित कर देते हैं
इसीलिये वे पा लेते फिर नित्य नव सुमन,
धरा किसी को श्यामल यौवन अर्पित करती
इसीलिये वह पा लेती फिर नूतन यौवन,

इन प्राणों को देकर क्या नव प्राण मिलेंगे ?
कैसे यह विश्वास कबूलूँ, यह बतलादो।
प्राण, मुझे तुम मिल न सकोगी यह निश्चय है,
पर मैं तुमको कैसे भूलूँ, यह बतलादो।

तुम सुगन्ध-सी मेरे हृदय-कुसुम की रानी
कलरव-सी मेरी रसना-विहगी की वाणी,
तुम तरंग-सी उठती रहतीं मानस-सर में
तुम मेरे चिन्तन-नभ की ऊषा पहचानी,

तुम छाया-सी साथ सदा मेरे रहती हो,
पर मैं तुमको कैसे छू लूँ, यह बतलादो।
प्राण, मुझे तुम मिल न सकोगी यह निश्चय है,
पर मैं तुमको कैसे भूलूँ, यह बतलादो।

*

ग्यारह

*

एक आँख में भरी विदा की करुणा है
और दूसरी में स्वागत का गान है ।

किसी गगन को जग-मग करने के लिये,
इस धरती का चाँद यहाँ से जा रहा,
और नवीन प्रकाश लुटाने के लिये,
इस धरती पर नया सूर्य है आरहा,

उधर हृदय में विकल पुरानी याद है,
इधर बुद्धि में नई-नई पहचान है ।
एक आँख में भरी विदा की करुणा है,
और दूसरी में स्वागत का गान है ।

एक दिशा में प्रिय को जाता देखकर,
रजनी की आँखों के अश्रु हरे हुए,
एक दिशा से प्रिय को आता देखकर,
ऊषा आँखों में अनुराग भरे हुए,

एक हाथ उठ गया विदा के वास्ते,
एक हाथ में स्वागत का सामान है,
एक आँख में भरी विदा की करुणा है,
और दूसरी में स्वागत का गान है,

उधर प्रतीची में पतझर का राज्य है,
डूब रहे उडु–फूल वियोग–विषाद में,
इधर पूर्व में उदित हुआ मधुमास है,
खिलते सुमन, गूंजते अलि आह्लाद में,

यही प्रकृति का परिवर्तनमय रूप है,
दुख–सुख से भीगा मेरा सम्मान है,
एक आँख में भरी विदा की करुणा है,
और दूसरी में स्वागत का गान है,

*

बारह

*

बार बार मैं पछताता हूँ।

मेरे जीवन का नद जैसे
समतल में निर्बन्ध बहा था,
उसी भाँति इसका प्रवाह
बीहड़ में भी स्वच्छन्द रहा था।
पर मेरी प्रगतिक-गति में
यह कैसा मोहक बाँध लगाया,
निपट निरंकुश मैं, तेरे
अंकुश से विवश हुआ जाता हूँ।

बार बार मैं पछताता हूँ।

वासव-पुर का आसव पीकर
भी न कभी मदहोश हुआ था,
अन्तक-पुर की कृन्तक पीड़ा
से न कभी साक्रोश हुआ था,
पर प्रेयसि ! तुमने यह कैसा
सुख–दुख का विवेक दे डाला,
मैं निःसीम आज निज को
सीमाओं में जकड़ा पाता हूँ ।

बार बार मैं पछताता हूँ ।

गिरि–गह्वर में कभी
दिगम्बर-सा मैं समाधिस्थ हो जाता,
कभी कामिनी के नूपुर की
रुन–झुन पर सर्वस्व लुटाता,
'वह सुकृत्य है, यह कुकृत्य है'
तुमने कैसा भेद बताया,
अब तो पाप–पुण्य के इन
आवर्त्तों में चक्कर खाता हूँ ।

बार बार मैं पछताता हूँ ।

फूलों के जन्मोत्सव पर
अलि गाते, मैं न कभी हर्षाया,
मुरझाने पर जगती रोती,
मैंने कभी न शोक मनाया,
तुमने अन्तर–आलबाल में
कैसा प्रणय–बीज बोया है,
आज मिलन पर हँसी,
बिछुड़ जाने पर आँसू बरसाता हूँ ।

बार बार मैं पछताता हूँ ।

जय पाने पर गर्वित और
पराजय पर न हताश हुआ था,
सृष्टि-प्रलय पर मुझे न कुछ
विस्मय–भय का आभास हुआ था,
ओ रंगिणि ! उर–रंगमंच पर
तुमने कैसा नाट्य रचाया,

मैं निर्द्वन्द्व अभीत आज
द्वन्द्वों में फँसकर घबराता हूँ।

बार बार मैं पछताता हूँ।

रूपसि ! तुमने रूप दिखाकर
मुझको बन्दी बना लिया है,
तुमने मेरी दुर्ब्बलता पर
यौवन का आघात किया है,
रह रहकर मैं सोच रहा हूँ
कैसे इस बन्धन में आया,
आज स्वयं को एक अलक्षित
इङ्गित पर चलता पाता हूँ।

बार बार मैं पछताता हूँ।

*

तेरह

*

उर-घन में विद्युत्-सी
आँखों में इन्द्रायुध-आभा-सी,
पलक-पुलक में हरियाली-सी
छाओ, वर्षा बन जाओ ।

या मानस-कानन में
ऋतुपति की सुषमा-सी, ऊषा-सी,
थिरक-थिरक कर खेलो,
मानो विश्व-अजिर में नियति-नटी ।

मेरी जीवन-ज्योत्स्ना
तन की स्फूर्ति, पूर्ति हो आत्मा की
मन-मन्दिर की प्रतिमा
या आशाओं की चैतन्य मूर्ति।

मैं तुम पर मिट जाऊँ, जैसे
शलभ दीप पर और दीप भी
एक झोंक पर झंझा की
बुझ जाता है, मिट जाता है।

मैं तुम में मिल जाऊँ; तुम भी
मेरे-में लय हो जाओ
ज्यों सरिता सागर में,
गागर में मिट्टी, मिट्टी में जग।

एक बने हम-तुम दो
जैसे जल की लहर, लहर का जल
जल-तल से ही निकल
विश्व में मुखरित होती है कल-कल।

*

चौदह

*

छूलो, पुलक पुलक खिल जाये।

मेरे उर की विषम-दाह को
सरस छाँह का सम मिल जाये।

आज रश्मि का प्रणय-बन्ध पा
सरसिज के उर-बन्ध खुलेंगे,
पा मधु-गन्ध अन्ध मधुपी के
मधु पीने को अधर तुलेंगे,

मेरी पिक अनुराग भरा
पञ्चम का ऐसा राग सुनादो,
युग युग से सोई तन्त्री का
जिससे तन्त्र-तन्त्र हिल जाये।

छूलो, पुलक पुलक खिल जाये ।

ओ घनबाले ! दरस-परस से
इस विटपी को सरस बनादो,
सूखी डालों में गालों की
लाली-से तुम सुमन खिलादो,

अपना स्नेह-सलिल बरसाकर
मुझको इतना बोझिल करदो,
जिससे जग-जीवन की झंझा—
का झोंका-झोंका झिल जाये ।

छूलो, पुलक पुलक खिल जाये ।

*

पन्द्रह

*

चार ही रोटी
उदर भी चार ही
और भिक्षुक भी खड़ा है पास
विधि-उपहास जैसा,
जो इसे दे दें
बुभुक्षित हम रहें
मना करदें यदि, गृही का—
फिर कहो आवास कैसा।

थी इधर तृष्णा,
उधर कर्त्तव्य था,
राम ही पाया न, फिर
आराम द्विविधा में दिया खो।
ले गया कुत्ता—
उठाकर रोटियाँ
है हृदय में मैल जब तक
कौन पा सकता पिया को।

हाथ मल मल—
विलखने में क्या धरा ?
रस लिया अलि ने, विरस
अरविन्द अब चूसा करो तुम।
एक धी, मन भी
न सुस्थिर हो सका।
भाग्य का फिर दोष क्या है ?
भाग्य को कोसा करो तुम।

*

सोलह

*

सखि, विदा की आज बेला ।

याद आतीं आज वे
बीते दिनों की सुखद घड़ियाँ
जब हृदय में थी बसाई
कल्पना की मधुर दुनिया ।

एक कल्पित वर-बधू के—
ब्याह का था खेल खेला ।
सखि, विदा की आज बेला ।

एक गुड्डा था बनाया
एक गुड़िया थी सजाई,
एक डोली में बिठाकर
दे रहे थे हम विदाई ।

क्या पता था सत्य होगा
पूर्व का सपना नवेला !
सखि, विदा की आज बेला ।

याद आता नीम का झूला
पके फल, आम्र-डाली,
रिमक-झिम बादल बरसते
इन्द्र-धनु की छवि निराली ।

कागज़ी नावें बहाकर
ले गया जलदीय रेला ।
सखि, विदा की आज बेला ।

वे गईं स्वप्निल निशाएँ
हो गया सच का सबेरा,
मोतियों को आज
पाटल–जाल पर किसने बखेरा ?

री ! उषा की माँग में
सिन्दूर सूरज ने उड़ेला ।
सखि, विदा की आज बेला ।

जा रही हो सत्य ही तुम
आज प्रिय के देश सजनी,
भूल मत जाना हमें
पाकर वहाँ के दिवस-रजनी ।

चिर विरह, चिर मिलन का
उर में जुड़ा है आज मेला ।
सखि, विदा की आज बेला ।

सत्रह

*

तुमने आग लगादी ।

एक दृष्टि से स्नेह वृष्टि कर
कैसी मधु-कटु तड़ित गिरादी ।
तुमने आग लगादी ।

ऐसी बदली उमड़ी, क्षण भर बरसी
उर में उमस भर गई,
चक्षु–चषक–वारुणी–कण पिला,
जीवन को चिर मदिर कर गई,
ऐसी कसकन मिली कि जिसमें
अमिय–हलाहल, शैत्य–तपन है,
क्षणिक मिलन की छलना, जिसने
चिर–थिर विरह–वह्नि सुलगादी।
तुमने आग लगादी

यह कल कोमल सरगम, जिससे
विकल हृदय-गति तीव्र हो गई
यह विहाग का राग कि जिसमें
मधुवन्ती रागिनी खो गई,
गंगा–जमुनी शुद्ध–विकृत
स्वर–संगम में करके अवगाहन,
तुमने धूमर, धूसर, नीरव
वीणा से मिजराब छुआदी।
तुमने आग लगादी।

यह कैसा आह्लाद, कि जिसमें
उन्मादक अवसाद भरा है,
यह पुष्पित वल्लरी कि जिसके
तल में कण्टक–दल बिखरा है,
यह कैसा स्वातन्त्र्य कि जिसमें
मिलने पर प्रतिबन्ध लगा है,
यह कैसी बेसुधी कि जिसने
सुधि की, स्मृति की साध जगादी ।
तुमने आग लगादी ।

पद्मे ! तेरे पलकों की कम्पन ने
अलि को व्यथित कर दिया,
चन्द्रे ! तेरी एक कला ने
इस चकोर को चकित कर दिया,
मृदुले ! तेरे केश–कुञ्ज में
सघन घनों का-सा विभ्रम कर
तृषित पपीहे ने पागल हो
लोक-लाज की भीति भगादी ।
तुमने आग लगादी ।

मधुमास

*

आया मधुमास,

छाया—

दिशि-दिशि उल्लास-हास

पथि-पथि सौरभ-सुवास

वने-वने नव विकास

जने-जने रस-विलास ।

पतझर के पीत पात

झर-झर कर

मर्मर कर

कह रहे यों—

कि 'जब आता यौवन प्रभात

बीत जाती है तब बचपन की चपल रात ,

वीरुधि-वीरुधि किशलय

विटपे-विटपे अंकुर

फूट उठे ऐसे—

जैसे सुग्गे की चारु चञ्चु ।

वृन्त-वृन्त

डाल-डाल

छिटकीं कलिकाएँ प्रचुर

मानो मुग्धाओं के उरोजों के अग्र मञ्जु ।

विकच उठे किंशुक जाल

किसी विरह-दग्धा ने

प्रिय का सादृश्य पा

चूम लिया इनको

तो और भी हुए निहाल

अरुणिमा अधर की ले—
और अधिक हो उठे
रक्त, अरुण, लाल-लाल ।

मदन-अनल-भस्मवत्
रसाल का पराग चूर्ण
ऊपर गिर पथिकों के,
देता परिताप पूर्ण
अपनी अङ्गनाओं की
उर में स्मृति ले वे
लौट जाते—
अपने आवासों को सवेग, तूर्ण ।

भाल पर झलकते श्रम विन्दुओं को पोंछ पोंछ
हरिणाक्षियों के चिकुर-निकर को छितराता
सरसी की सरस तरङ्गों से खेल-खेल
पङ्कज-परिमल को इतस्ततः बिखराता
मन्द-मन्द गन्धवाह

लम्पट पुरुष की भाँति
चुपके से आकर—
छू लेता लता की बाँह
लता भी डरकर इसी से
सती की भाँति—
दृढ़ता से पकड़ लेती
प्रिय पति पादप की छाँह ।

वनमाली-परभृत ने
कुहू-मुरलिका का स्वन
पञ्चम में छेड़ दिया
मानिनी-गोपिका ने
मान छोड़, अपनापन—
प्रियतम को सौंप दिया ।

व्याध-से मधुकर का
बीन-सा सुन गुञ्जन
स्मर-शर-क्षत हुए
कुरङ्ग से प्रवासी जन ।

मृग-शावकों-सी जिनकी

चञ्चल रसीली दृष्टि

कनक-लता की डालियों-सी

जिनकी गात-यष्टि

ऐसी सुकुमारियाँ

कानन की कुमारियाँ

धारण कर पीत वसन

जटा जूट में लगा

चम्पक के स्वर्ण-सुमन

फूलों में फूलों-सी

उपवन की वीथिका में

फूलों को चुनती हुईं

करती हुईं सरस हास

गा रही थीं मधुर गीत—

'आया मधुमास सखि,

छाया मधुमास।

चम्पा के कर्ण तक मधुकर का गान—
जा न सके इससे लगाती पिक तान,
वन-वन में झूम झूम झुकते पलाश।
आया मधुमास सखि,
छाया मधुमास।

डाल-डाल झूलते अनार—कचनार
खेत-खेत खेलती सरसों सुकुमार
सौरभ लुटाता चला मन्द वातास।
आया मधुमास सखि,
छाया मधुमास।'

* * * *

मधुर—मधुर
रे वसन्त!
तू प्रकृति—वधू से—
परिणय करने को जब आता सोल्लास
भर देता कलियों में विकास,

वे झाँक-झाँक अवगुण्ठन से
पुर-युवती-सी
पुर-बाला-सी
करती हैं तेरा नव दर्शन
करती हैं तुझसे नव परिचय।

तू किरणों के रथ पर चढ़कर
हरियाली के कोमल पथ पर
बढ़ता है जब धीरे-धीरे
वन-उपवन के तीरे-तीरे
तब स्वर्ण लुटाते हैं सविता
तेरे ऊपर,
तेरे नीचे—

वसुधा बन जाती स्वर्णमयी
कोयल मानो करती कविता,
तेरे स्वागत में झूम-झूम।
ये कलावन्त के मूर्त रूप
हैं शिखी नाचते घूम घूम।

तू पल्लव-वसनों से सजकर

कुसुमाभरणों को धारण कर

मञ्जरी-मुकुट सिर पर रख कर

वर-सा परिणेता-सा बनकर

करता जब मण्डप में प्रवेश—

तब—

माधवी लता

मंगल-सखि-सी

सुमनों की लाजा को बखेर

करती भ्रमरी-सी पुण्य-गान,

छा जाती है तेरे ऊपर—

बनकर वासन्ती-सा वितान ।

* * * *

तरुणी

अरुणी

लावण्यमयी

सौन्दर्यमयी यह प्रकृति-वधू—

सरसों के उबटन को मलकर

सौरभ-सरि में अवगाहन कर

करके सुन्दर सोलह शृंगार

मुकुलित पद्म-द्वय सा उभार

ढँक कर यौवन का भव्य भार

कलिकाओं के आभूषण से

पाटल–पलाश–परिधानों से

आती है परिणीता–सी बन

जब प्रियतम से परिणय करने,

अरविन्द पदों में बज उठते

तब अलि की गुन–गुन से नूपुर

मोती से बिखर–बिखर जाते

छुन–छुन की पद–गति से भूपर।

केतकी कुसुम-सा खिल उठता—

दिग्वधुओं का मृदु मधुर हास

द्विज–कुल करता तब सामगान

शुक–गण करते शाखोच्चार

रम्भा–सी तितली थिरक–थिरक

दिखलाती हाव-भाव-अभिनय

चटकाएँ करतीं वंश–रीति

श्यामा गाती मांगलिक गीत—

'आज सखि, गाओ मंगल-गान ।

सजा पूजन-अर्चन का थाल

हाथ में धारण कर जयमाल

छोड़कर लाज भरी यह चाल

करो तुम नई नई पहचान ।

आज सखि, गाओ मंगल-गान ।

मिला रति को नूतन श्रृंगार

नियति को वासन्तिक संसार

सुप्त वीणा के जागे तार

मिला ऊषा को अरुण विहान ।

आज सखि, गाओ मंगल-गान ।'

*

फूल

*

फूल—

छविमान

अम्लान

खिल–खिल कर डालों पर

हिल–हिल कर डालों पर

अनिल के झकोरों पर

झुक–झुक

ले–ले हिलोर

दुनिया की निधि बटोर
भूल रहा भूला
फूला-फूला
भूला-भूला ।

अपने सुकोमल वृन्त-हस्त को हिला-हिला
मानो कर रहा हो—
निज प्रेयसी का आह्वान

अथवा--
उद्विग्न-सा
चंचल-सा हो उठा
किसी की प्रतीक्षा में
देर तक लगाकर ध्यान ।
अहा ! कितना रूपवान !
हरित मणियों के मध्य
विकसित प्रवाल-सा

अथवा—
किसी तरुणी के
अरुण-अरुण गाल सा ।

बखेर आलबाल में
    पराग स्वर्ण जाल-सा
        पीत-मुक्ता-सर मध्य
            हरे-हरे पङ्ख फैला
                क्रीड़ा करता हो जैसे—
                    रक्त-मुख मराल-सा ।

अतिशय सुकुमार-सा
  अमृत के सार-सा
    सौरभ के भार से
      नमित-सा
        प्रमुदित-सा
          गुञ्जित निकुञ्ज में—
            करता अठखेलियाँ
              रुचिर-रुचिर केलियाँ ।

* * *

फूल
    पूत-सा
        अछूत-सा

सान्द्र वंश-वृक्षों से घिरा
लग रहा यों कि—
रिपुओं से डरकर
दृढ़ दुर्ग को रचकर
निश्चित–सा
रक्षित–सा
बैठा महीपति ज्यों ।

या—
नगरों के झंझटों से
ऊब कर
खीझ कर,
कानन की कान्तता पर
लोभ कर
रीझ कर

निपट एकान्त में
नितान्त प्रशान्त में
कर रहा हो आत्म–चिन्तन
बैठा बाल यति ज्यों ।

सहस्त्र–दल–सन्तति को
विकसित कर
स्फुटित कर
कर रहा हो योगी–सा
ब्रह्म की सुरति ज्यों।

अथवा—
वियोगी–सा
कुबेर के शाप से अभिशप्त होकर
अलका से पतित होकर
प्रिया से विरहित होकर
बैठा चित्रकूट की उपत्यका में
यक्ष–सा
ओस विन्दुओं से आँसुओं को ढलका ढलका
कर रहा हो बीते दिनों की स्मृति ज्यों।

कूक–कूक कोयल—
कह रही थी उसकी करुण–कथा
चातक की पी–पी में—
छिपी थी उसकी विरह–व्यथा।

अभिनव भावों में भरा-भरा
कवि के उद्‌गार-सा
सुषमा के पुञ्ज में
गुञ्जित निकुञ्ज में
करता अठखेलियाँ
रुचिर-रुचिर केलियाँ।

* * * *

फूल
भोला-सा
बाला-सा
बाल-रवि-रश्मि ने—
खोले थे उसके नयन
नियति ने स्व कर से
सजाया था उसका अयन,

चयन कर ताम्र-रस
पी-पी कर सोम रस
विधि ने बनाया था—
उसको मधुपात्र-सा

मधुकर मधुबाला से
गा-गा कर मधुर गीत
वितरण करते थे मधु
कण-कण को हँसा-हँसा ।

रसा ने रस दिया,
यश मिला पावस को
बरस-बरस उसी ने तो रस बरसाया था ।

शरद् के हास को
हेमन्त की सुवास को
और—
शिशिर काल के
नूतन विकास को
लेकर ही वसन्त उसे
मुकुलित कर पाया था
सौरभ भर पाया था ।

गाया था गुण-गौरव
उसका पात-पात ने

जीवन प्रभात ने
उसको दिया सिंगार

यौवन की दोपहरी
उसकी थी हासमयी
और—
सान्ध्य बेला में
करुणा की थी पुकार ।

आदि था नाट्य-युक्त
मध्य था लास्य-मय
अन्त में—
अनन्त रण-ताण्डव का प्रसार था ।
काव्य के नेत्र-सा
कला के क्षेत्र-सा
गुञ्जित निकुञ्ज में
करता अठखेलियाँ
रुचिर-रुचिर केलियाँ ।

*

तितली

•

तितली

रंग-रँगीली

छैल-छबीली

सन्ध्या की स्वर्णिमा को

ऊषा की लालिमा को

अम्बर की श्यामता को

घन की अभिरामता को

अंक में छिपाये

पंखों में लिपटाये

विश्व–सौन्दर्य को—
आँखों में छिपाये
निज देह को सजाये
देहधारी श्रृंगार–सी
वसन्त की बहार–सी

और—
रतिनायक के शायक–सी
नायिका–सी
नटी–सी
नृत्य की कला में लिपटी–सी
ठुमकती–ठुमकती
थिरकती–थिरकती
फुदकती–फुदकती
जा रही थी–
गाती हुई मौन गीत ।

* * * *

तितली

नवनीत-सी कोमल

नयन-सी चञ्चल

कलिका-सी निश्छल

अलि-सा कोई भी

आकर अनजान में

लूट ले सर्वस्व चाहे

इसका कुछ न ध्यान था

निपट अज्ञान-सी

भूली-सी

भ्रमी-सी

अपने ही रङ्ग में

रँगी हुई

पगी हुई

इठलाती

मद-माती

कोई रमणीय
कमनीय सुख पाती
हर्षाती
जा रही थी
गाती हुई मौन गीत ।

* * * *

तितली
मधुवन के मोह को
मधु-रस के लोभ को
मूकता के क्षोभ को
हृदय में दबाये

और—
पुष्पासव पीने की कामना को संग लिये
प्रियतम से मिलने की साधना को संग लिये
अङ्ग के विकास 'औ' समास के व्याज से
सृष्टि और समष्टि की कल्पना को संग लिये
यौवन में उमंग लिये

भावों में रमी-रमी
सुधा में सनी-सनी
कल्पना लोक की परी-सी
रस भरी-सी
कनक की छड़ी-सी
मणियों जड़ी
उड़ी-उड़ी
चली-चली
जा रही थी
गाती हुई मौन गीत ।

* * * *

तितली
सुन्दर-सी
सलौनी-सी
सुखद-सी
मन-मोहनी-सी
शिशुओं के खिलौने-सी

धूप-सी

छाँह-सी

लज्जिता बधू-सी

किसलय अवगुण्ठन में—

छिप-छिप

फिर झाँक-झाँक

आँख मिचौनी करती हुई

प्रकृति परी के साथ

चलती मस्ती के साथ—

सरिता के कूल-कूल

तरुओं पर भूल-भूल

मानस में फूल-फूल

जाति के बन्धन से

समाज के बन्धन से

राष्ट्र के बन्धन से

विश्व के बन्धन से—

दूर-दूर

बहुत दूर

प्रणय के बन्धन में

बँधी-बँधी

कसी-कसी

हवा के घोड़े पर

चढ़ी-चढ़ी

बढ़ी-बढ़ी

जा रही थी

गाती हुई मौन गीत।

* * * *

तितली

गली-गली घूम-घूम

कली-कली चूम-चूम

चली-चली झूम-झूम

पहुँची एक पुष्प-पास

करती हुई मौन हास

गाती हुई मौन गीत,
कुल की थी यही रीति
कि—
मधुवन में रुक जाना
फूलों पर झुक जाना
फूलों में रम जाना
फूलों में खो जाना
मधु 'पी-पी इठलाना
मधु पी-पी मदमाना
मधु-रस को बरसाना
मधुमय स्वयं हो जाना।

* * * *

तितली
हाँ तितली ने
पहले की उस प्रफुल्ल पुष्प की प्रदक्षिणा
फिर गई पास
धीरे-धीरे लेती सुवास

मानो कहती—

"लाओ मेरे संयम की दक्षिणा,

रे, कितने ही गिरि-श्रृङ्ग लाँघकर आई हूँ

कितनी ही सरिताएँ पार कर आई हूँ

कितनी ही यातनाएँ छाती पर झेल-झेल

कितने ही काँटों पर खेल-खेल आई हूँ,

प्रियतम !

प्राण प्रियतम !

मम-आँखों के तारे !

प्यारे !

कितने उपवास करके आज तुझे पाया है

जीवन धन पाया है ।"

*   *   *

तितली

सूँघ-सूँघ पंखुड़ियाँ

कर-कर मृदु रँगरलियाँ

हो-हो आनँद-विभोर

अपने पङ्ख को बटोर

अलसित-सी

थकी-सी,

डगी-सी

गिर पड़ी फूल की गोद में,

अतिशय प्रमोद में

अपना भी रङ्ग भूल

हो गई स्वयं फूल।

मिल गया उसको—

निज साधना का मधुर कूल।

वासनाएँ पूर्ण हुईं

कामनाएँ पूर्ण हुईं

निर्झर की झर-झर में

खग-कुल की कल-कल में

कानन की हल-चल में

छिप गया मौन गीत

रुक गया मौन गीत

स्वप्न

*

अन्तर के फलक पर
किसी कलाकार ने
सुधि की तूलिका से
आज फिर उभार दिये
धुँधले पड़े जो चित्र ।

उस दिन की रात थी
पूनम अवदात थी
शीतल सुगन्ध मन्द
मदिर–मदिर वात थी

तारों की छाँह में
खेतों की राह में
लिपटी थी चाँदनी
चन्दा की बाँह में ।

उसी शुभ्र बेला में
मौन जन-मानस को—
(सहसा कहीं से आ)
किसी राज-हंसी ने
उद्वेलित कर दिया ।

मेरी ही कल्पना ने
मेरे उर-सौध में
जिसकी प्रतिष्ठा की
वही सौन्दर्य-मूर्ति
उस दिन साकार बन
सम्मुख उपस्थित थी ।

निखरा लावण्य था
कुन्त से कुन्तल थे
सौम्य मुख-मुद्रा पर
हास्य की रेखा थी
अङ्ग-रङ्ग अनुपम था

हृदय ने चाहा कि—
पहले इस प्रतिमा की
पूजा करूँगा मैं ।
नेत्रों ने चाहा कि—
अपलक देखेंगे हम
नेता बनेंगे हम ।

द्वन्द्व हुआ, जीत हुई—
पहले इन नयनों की,
(चिर प्यासे अयनों की)
और वे मनोरम उस—
मूर्ति पर अटक गये
विबुध-चक्षु बन गये।

मुझे लगा ऐसे कि—
जैसे मैं पहुँच गया
नन्दन कानन में और—
वहाँ कल्प बल्लरियाँ
दिखतीं जो किन्नरियाँ
विवश कर रही हैं मुझे
अपनी स्निग्ध छाया में
विनोद करने के लिये।

* * * *

देव-सरिता का तट
पास ही पाषाण-खण्ड
प्रतिमा वहाँ बैठ गई
मैं भी मन्त्र-मुग्ध-सा
उसके एक कोने पर

हिम-गिरि-कन्दराओं से
टकराकर, मुखरित-सा

आया वसन्तानिल
एक झोंक में ही वह
भर गया मादकता।

किसने यह स्पर्श किया
पुलक-पुलक फूल उठा
(मानों तम दूर हुआ
अक्षय प्रकाश मिला)
हृदय की वीणा के
तार झनझना उठे।

मानस की निर्झरिणी
गाती 'झर-झर' स्वर में
सींचने लगी वह फिर
स्नेह-द्रवित सलिल से
म्लान प्रेम-लतिका को।

परिमल-पराग पूर्ण
एक पुष्प खिल उठा
अपने में विस्मृत-सा
वृन्त पर हिल उठा।

* * * *

मैंने देखा उनकी—
प्रत्येक भाव-भङ्गी में
एक आकर्षण था

शारदी ज्योत्स्ना का
मुक्त सुधा-वर्षण था
जिसको पी लेने को
सागर उन्मत्त था ।
कैसा वह हर्ष था
कैसी वह मस्ती थी
रूप की तरंगों पर
झूम रही कश्ती थी ।

* * * *

चन्द्रमा प्रसन्न था
चन्द्रिका प्रसन्न थी
पर जाने किस भय से
प्रकृति अवसन्न थी ।
एक पात्र दे रहा
एक पात्र पी रहा
एक गात्र हँस रहा
एक गात्र जी रहा ।

भावों की अप्सरियाँ
उर के हिंडोले में
बैठी हुई झूल रहीं
(नये-नये पैंग बढ़े,
उड़ता दुकूल रहा)

जाने यह कैसे हुआ
स्नेह बन्धन छूट गया
भावों की परियों का
हिंडोला टूट गया।

एक स्वर लहरी—
कर्ण-रन्ध्रों से टकराई
"रात जो अपना था
दिन में वही सपना है।"

चन्द्रिका चली गई
चन्द्रमा उतर गया
रात का सिंगार सब
पात पर बिखर गया

एक स्वर शेष छोड़
रागिनी चली गई।
एक दाँत मार कर
नागिनी चली गई
रंजक-स्वप्न मात्र से
वेदना छली गई

एक टीस रह गई
एक कसक रह गई
स्वप्न तो निकल गया
गाथा भर रह गई।

*

अनुक्रमणिका